Shodhshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2023 SHISRRJ | Volume 6 | Issue 1 | ISSN : 2581- 6306

अभिज्ञानशाकुन्तल में नैतिक मूल्य एक विमर्श

डॉ. देवनारायण पाठक
शोधनिर्देशक, संस्कृत विभाग
नेहरू ग्रामभारती (मानित वि.वि.)
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।

विजय कुमार पटेल
शोधच्छात्र, संस्कृत विभाग
नेहरू ग्रामभारती (मानित वि.वि.)
प्रयागराज, उत्तर प्रदेश।

Article Info

Publication Issue :
January-February-2023
Volume 6, Issue 1

Page Number : 67-75

Article History
Received : 01 Jan 2023
Published :13 Jan 2023

शोधसारांश– प्राचीन भारतीय महापुरूषों ने जिन नैतिक मूल्यो की स्थापना की है वे जीवन के व्यक्तिगत हितों की ओर प्रेरित करते हुए सामाजिक हित को ध्यान में रखकर अन्तिम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करना ही अनिवार्य बताया है। मनुष्यों के आचारों–व्यहारों का निर्धारण नैतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में समाज के एक बड़े समूह द्वारा अनुमोदित होता है। इसलिए मनुष्यों का आचरण उनकी स्वाभाविक विशिष्टताओं एवं सामाजिक वातावरण का परिणाम होता है। लेकिन जब मानव समाज के एक अंग के रूप में मानव समाज द्वारा निर्धारित मानदण्डों के अनुसार आचरण नहीं करता है तब सामाजिक या वैयक्तिक मूल्यों के प्रति असंवेदनशील हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक मूल्यों का महत्व कम हुआ है। अत: व्यक्तियों को सामाजिक मूल्यों मानदण्डों के अनुसार ही आचरण करना चाहिए। सामाजिक मूल्यों या वैयक्तिक मूल्यों के प्रति संवेदनशील रवैया अपनाना चाहिए। जिससे नैतिक व आदर्श युक्त समाज की स्थापना हो सके।

मुख्य शब्द – नैतिक मूल्य, अभिज्ञानशाकुन्तल, कालिदास, जीवन, सामाजिक, समूह।

साधारण रूप में यदि हम नैतिक शब्द की बात करें तो सर्वप्रथम नैतिक शब्द का अर्थ अच्छा होता है, सच्चाई, ईमानदारी, निश्छल प्रेम, दयालुता तथा मैत्री आदि को नैतिक मूल्य कहा जाता है। इनमें से सच्चाई को स्वत: साध्य मूल्य कहा जाता है क्योंकि यह अपने आप में मूल्यपूर्ण है। इसका प्रयोग साधन की भाँति नहीं किया जा सकता है क्योंकि यह स्वत: साध्य होता है। सभी प्रकार के विवादों में सत्य का ही अन्वेषण करने का प्रयास किया जाता है। जबकि सत्य अपने आप में एक विस्तृत दार्शनिक अवधारणा है। किन्तु यदि संक्षिप्त रूप से सत्य के विषय में विचार किया जाय तो इसे वस्तु स्थिति को ज्यों का त्यों कहना कहा जाता है। इसके कहने का तात्पर्य यह है कि बिना किसी पूर्वाग्रह के किसी घटना या वस्तु स्थिति को देखना, उसे समझना और उसको उसी रूप में ज्यों का त्यों, अभिव्यक्त करने को ही सच्चाई कहते हैं।

मनुष्य में स्वाभाविक रूप से दया नामक सद्गुण भी विद्यमान रहता है। मानव जातियों में अन्य लोगों के प्रति

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

दयालुता का भाव उत्पन्न होना स्वाभाविक गुण है। प्राय: मानव अन्य लोगों को जब कठिनाई में देखता है तब उसका अन्त:करण द्रवित हो उठता है और वह उस कठिनाई में पड़े हुए की सहायता करने के लिए प्रसाय करने लगता है। क्योंकि मानव पृथ्वी पर निवास करने वाले सभी प्राणियों में से एक बुद्धिमान प्राणी है। इसिलिए वह सोचता है कि इस प्रकार की समस्याएँ किसी के भी ऊपर आ सकती हैं इस कारण से दयाभाव से युक्त होकर ही एक दूसरे की सहायता करने का प्रयास करता है।

सम्पूर्ण जगत में प्रेम को सर्वोपरि स्थान दिया जाता है।मनुष्य एक दूसरे से प्रेम करता है। प्रेम न केवल मानवों में ही विद्यमान होता है अपितु पशु–पक्षियों तथा अन्य प्राणियों में भी घनिष्ठ प्रेम विद्यमान रहता है।

मनुष्य जाति ऐसी ही है कि वह अपनी जाति से तो प्रेम करता ही है, इसके अलावा वह पशु–पक्षियों तथा अन्य जीवों से भी स्नेह रखता है। जब दुष्यन्त मृग का पीछा करते हुए आश्रम के निकट पहुँच जाते हैं तो ऐसा करते हुए उनको तपस्वियों द्वारा रोका जाता है और कहा जाता है कि हे राजन् यह आश्रम का मृग है इसे न मारिए।

न खुल न खलु बाण: सन्निपात्योऽयमस्मिन् मृदुनि मृगशरीरे पुष्पराशाविवाग्नि:।
क्व बत हरिणकानां जीवितं चातिलोलं क्व च निशितनिपाता वज्रसारा: शरास्ते।।[1]

अर्थात, हे राजन यह आश्रम का मृग है इसे न मारिए, न मारिए। इस सुकुमार मृग के शरीर पर पुष्पराशि पर अग्नि के समान यह बाण न चलाइए, न चलाइए यह अत्यन्त खेद की बात है कि कहाँ तुच्छ हरिणों का जीवन और कहाँ तीक्ष्ण प्रहार करने वाले व्रज के समान कठोर आपके बाण।

तत् साधुकृतसन्धानं प्रतिसंहर सायकम्।
आर्तत्राणाय व: शस्त्रं न प्रहर्तुमनागसि।।[2]

अत: अच्छे प्रकार से धनुष पर सधे हुए अपने बाण को उतार लिजीए। आपका शस्त्र दु:खितों की रक्षा के लिए, निरपराधों पर प्रहार के लिए नहीं। क्योंकि यदि रक्षक ही भक्षक बन जायेगा तो प्राणियों की रक्षा कौन करेगा और इस तरह से तो प्रजातियाँ ही विलुप्त हो जायेंगी। इस प्रकार से तपस्वियों ने राजन् को प्राणिमात्र से स्नेह करने का संदेश दिया की पीड़ितों की रक्षा करना एक राजा का प्रथम कर्तव्य होता है। क्योंकि राज्य की सीमा के भीतर निवास करने वाले समस्त प्राणियों की रक्षा का दायित्व उस राज्य के राजा का है और उसका नैतिक कर्तव्य भी बनता है।

सभी मनुष्य एक ही सर्वशक्तिमान परमात्मा की सन्तान है, इसलिए उनमें एक दूसरे के प्रति प्रेम होना स्वाभाविक है। यदि वास्तविक रूप में देखा जाए तो मानव प्रेम ही ईश्वर के प्रति सच्ची श्रद्धा है।

प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति की यह विशेषता रही है कि यह वसुधैवकुटुम्बकम् की बात करती है। इसका अभिप्राय यह कि सम्पूर्ण पृथ्वी को ही एक परिवार के समान मानना है। इस पृथ्वी पर निवास करने वाले सम्पूर्ण प्राणियों को परस्पर स्नेह एवं भाईचारे के साथ मिलकर रहने की प्रेरणा प्रदान करती है। यह भारतीय संस्कृति की महत्वपूर्ण विशेषता है। परन्तु वर्तमान समय में सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि समाज में एवं मनुष्यों में साम्प्रदायिकता,

---

1 अभिज्ञानशाकुन्तलम 1/10

2 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/11

जातियता, भाषावाद, क्षेत्रीयता, हिंसा की कुत्सित एवं संकीर्ण भावना सम्पूर्ण समस्याओं का मूल कारण है। इन्हीं भावनाओं के कारण मनुष्यों का वर्तमान समय में नैतिक एवं चारित्रकि पतन भी हो रहा है। नैतिकता का सम्बन्ध मानवीय अभिवृत्ति से है। इस कारण से नैतिकता का शिक्षा से अभिन्न सम्बन्ध भी है। कौशलों व दक्षताओं की अपेक्षा अभिवृत्ति–मूलक प्रवृत्तियों के विकास में पर्यावरणीय घटकों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। यदि विद्यार्थियों के परिवेश में नैतिकता का अभाव है तो जिन तत्वों की उनके परिवेश में अधिकता होगी वे उनके जीवन के अंश बन जायेंगे। इससे यह स्पष्ट होता है कि मूल्य पढ़ाये नहीं जाते अपितु परिवेश से अधिगृहित किये जाते हैं। राजा दुष्यन्त मृग का पीछा करते हुए आश्रम के समीप पहुँच जाते हैं जहाँ तपस्वियों द्वारा आश्रम का मृग है इसे न मारिए ऐसा कहने पर आश्रम धर्म अनुकूल व्यवहार करते हैं और धनुष पर चढ़ाये हुए अपने बाण रोक लेते हैं इससे तपस्वि प्रसन्न होकर उनको अपने गुणों से युक्त पुत्र प्राप्त करने का आशीर्वाद प्रदान करते हैं।

जन्म यस्य पुरोर्वंशे युक्तरूपमिदं तव।
पुत्रमेवंगुणोपेत चक्रवर्तिनमाप्नुहि।।[3]

दुष्यन्त शकुन्तला के सौन्दर्य को देखकर उसके प्रति आकर्षित हो जाते हैं। किन्तु आकर्षित होते हुए भी वे शकुन्तला के प्रति प्रेम को तबतक प्रकट नहीं करते हैं जब तक की वे शकुन्तला के सम्पूर्ण जीवन वृतान्त को जान नहीं लेते हैं। इससे दुष्यन्त का चरित्र उज्जवल प्रतीत होता है। जब सम्पूर्ण वृतान्त पूर्ण रूप से जान लेते हैं कि शकुन्तला एक क्षत्रिय एवं अप्सरा से उत्पन्न सौन्दर्य की प्रतिमूर्ति है और एक क्षत्रिय द्वारा पत्नी रूप में ग्रहण किये जाने योग्य है। अवसर प्राप्त होने पर वह अपने आप को शकुन्तला के सामने प्रकट कर देते हैं।

कः पौरवे वसुमतीं शासति शासितरि दुर्विनीतानाम्।
अयमाचरत्यविनयं मुग्धासु तपस्विकन्यासु।।[4]

शकुन्तला की सखी प्रियवंदा और अनसूया है जो उसकी सहचरी है उनके माध्यम से ही दुष्यन्त शकुन्तला के विषय में सम्पूर्ण वृतान्त की जानकारी प्राप्त कर लेते हैं। शकुन्तला की सखियों में अनुसूया दूरदृष्टि रखने वाली है जबकि प्रियवंदा प्रिय व मधुर भाषिणी है। अनसूया द्वारा यह कहने पर की यदि पिताजी आज यहाँ होते तो विशिष्ट अतिथि को अपना सर्वस्व देकर कृतार्थ हो जाते। सखी की इस बात को शकुन्तला समझ जाती है कि अनसूया उसको ही लक्ष्य करके दुष्यन्त से यह बात कर रही है क्योंकि कण्व ऋषि शकुन्तला को योग्य वर को देने के लिए निश्चय किये हुए थे, तो अनसूया की बातों से लज्जीत होती हुई शकुन्तला वहां से उठ कर जाना चाहती है। इस पर दुष्यन्त मन ही मन उसे पकड़कर रोकना चाहते हैं किन्तु विनय के कारण ऐसा नहीं करते हैं। इस प्रकार का उनका आचरण उनके नैतिक आदर्श को अभिव्यक्त करता है।

अनुस्यायन् मुनितनयां सहसा विनयेन वारितप्रसरः।
स्थानादनुच्यलन्नपि गत्वेव पुनः प्रतिनिवृत्त।।[5]

---

3 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/12

4 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/25

5 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/29

शकुन्तला के प्रस्थान करते समय प्रियवंदा उसको बलात् लौटाती है। वह उससे कहती है कि तू दो वृक्ष सिंचने की मेरी ऋणी है, अत: अभी यहाँ से नहीं जा सकती हो। प्रियवंदा की बात सुनकर दुष्यन्त शकुन्तला को थकी हुई जानकर शिष्ट शब्दों में उसको अभिव्यक्त करते हुए अपनी नामांकित अंगूठी देना चाहते हैं जिससे वह ऋण मुक्त हो सके। इस प्रकार का मर्यादित आचरण नैतिकता को दर्शाता है।

स्रस्तांसावतिमात्रलोहिततलौ बाहू घटोत्क्षेपणाद्
अद्यापि स्तनवेपथुं जनयति श्वास: प्रमाणाधिक:।।
बद्धं कर्णशिरीषरोधि वदने धर्माम्भसां जालकं
बन्धे स्रंसिनि चैकहस्तयमिता: पर्याकुला मूर्धजा:।।[6]

अर्थात शकुन्तला को वृक्ष सींचने के कार्य से मैं थकी हुई देख रहा हूँ क्योंकि घड़ा उठाने से इनके हाथ कन्धे पर से झुक गये हैं और हथेलियाँ अत्यधिक लाल हो गयी है। बहुत लम्बे श्वास अब भी स्तनो को कम्पित कर रहे हैं। कान के शिरीष के फूल को रोकने वाला पसीने की बूँदों का समूह मुखमंडल पर व्याप्त है। वेणी का बन्धन खुल जाने से बालों को एक हाथ से पकड़े हुए है और बिखरे हुए हैं। ऐसा कहकर अपनी अंगूठी को देना चाहता है।

कण्व ऋषि के शिष्यों की बात मानकर जब दुष्यन्त ने आश्रम धर्म के अनुकूल शिष्ट व्यवहार किया तो ऋषि शिष्य उनके व्यवहार से अति प्रसन्न हुए और उन्हें आशिर्वाद प्रदान कते हुए कहा कि हे राजन् अपने पूर्वजों के व्यवहार का अनुकरण करने वाले आपके लिए यह अत्यन्त उचित है क्योंकि पुरूवंशी राजा आपत्तिग्रस्त जनों को अभयदान–रूपी यज्ञ की दीक्षा लिये हुए है।

अनुकारिणीं पूर्वेषां युक्तरूपमिदं त्वयि।
आपन्नाभयसत्रेषु दीक्षिता: खलु पौरवा:।।[7]

राजा दुष्यन्त नैतिक आदर्शों में अग्रणी के साथ एक आज्ञाकारी पुत्र भी थे। उनके लिए माता को तथा गुरूजनों की सेवा सर्वोपरि थी। इसिलिए हस्तिनापुर वापस लौट जाने के लिए माता जी का संदेश प्राप्त होने पर वह दुविधा में पड़ जाते हैं कि दोनों ही कार्य अलग–अलग स्थान पर होने से उनका मन सामने पहाड़ से रूकी हुई नदी के प्रवाह के समान दुविधा में पड़ जाता है। क्योंकि एक तरफ उनकी माता जी का हस्तिनापुर लौटने का आदेश है तो दूसरी तरफ गुरूजनों एवं ऋषियों की रक्षा का भार यह दोनों ही कार्य अनुलंघनीय है। इस प्रकार की विचार धारा रखने वाला व्यक्ति ही आदर्श व्यवहारों वाला माना जाता है।

कृत्ययोर्भिन्नदेशत्वाद् द्वैधीभवति में मन:।
पुर: प्रतिहतं शैले स्त्रोत: स्त्रोतोवहो यथा।।[8]

माधव्य को दुष्यन्त की माता पुत्रवत् मानती हैं इसलिए दुष्यन्त ने पुत्र धर्म का कार्य करने के लिए हस्तिनापुर

---

6 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 1/30

7 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2/16

8 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 2/17

माधव्य को भेज देते हैं स्वयं को तपस्वियों के कार्य में व्यस्त चित्र बताकर माता एवं गुरूजन दोनों के प्रति अपने कार्य का निर्वहन करते हैं। जिससे वह एक अच्छे शासक व प्रजा के हितैशी होने तथा माता का आज्ञाकारी पुत्र होने के धर्म का पालन करते हैं। वह तपस्या की शक्ति को भलिभांति जानते हैं इस कारण से शकुन्तला के साथ ऐसा कोई अनैतिक व्यवहार नहीं करना चाहते हैं जिससे कि कण्व ऋषि क्रोधित हो। शकुन्तला के अन्तर्मन को जब भाँप लेते हैं कि वह भी उनके प्रति उतनी ही आसक्त है जितना की वह फिर भी मर्यादा की रक्षा के लिए आसक्त होते हुए भी अपने प्रेम को प्रकट न करते हुए समय की प्रतीक्षा करते हैं। उसके प्रति आसक्त मन को लौटाने में असमर्थता प्रकट करते हैं।

जाने तपसो वीर्यं सा बाला परवतीति में विदितम्।

अलमस्मि ततो हृदयं तथापि नेदं निवर्तयितुम्।।[9]

महर्षि कण्व की पुत्री शकुन्तला तथा दुष्यन्त दोनों ही एक दूसरे के प्रति आकृष्ट हैं। कण्व पुत्री तिरस्कार के भय से अपने प्रेम को दुष्यन्त के समक्ष प्रकट नहीं करती हैं तो दुष्यन्त मर्यादा की रक्षा के लिए जब तक भलिभाँति यह जान नहीं लेते हैं कि शकुन्तला भी उतनी ही आसक्त है उनपर जितना की वह तब तक अपने प्रेम को उसके समक्ष प्रकट नहीं करते हैं। पूर्ण रूप से आसक्त हो जाने पर ही शकुन्तला के समक्ष अपने प्रेम को प्रकट करते हैं।

अयं स ते तिष्ठति संगमोत्सुको विशङ्कसे भीरू यतोऽवधीरणाम्।

लभेत वा प्रार्थयिता न वा श्रियं श्रिया दुरापः कथमीप्सितों भवेत्।।[10]

अनसूया नैतिक व्यवहार को जानने वाली एवं दूरदृष्टि की विचार धारा रखने वाली महिला थी। अनसूया अपनी प्रियसखी शकुन्तला के भविष्य को लेकर सदैव चिन्तनशील रहा करती थी। इसलिए वह राजा दुष्यन्त से निवेदन करती है कि आप राजाओं की बहुत सी पत्नियाँ हुआ करती हैं। आप हमारी प्रियसखी के साथ उसी प्रकार का व्यवहार करें जिससे की वह अपने बन्धु-बान्धवों के लिए शोचनीय एवं निन्दनीय न हो। दुष्यन्त ने शकुन्तला की सखी अनसूया को आश्वस्त करने के पश्चात् ही उसकी सखी शकुन्तला से गान्धर्व विवाह करके उसके साथ प्रेमव्यवहार करता है।

गान्धर्वेण विवाहेन वहव्यो राजर्षिकन्यकाः।

श्रूयन्ते परिणीतास्ताः पितृभिश्चाभिनन्दिताः।।[11]

दुष्यन्त से बार-बार शिष्टाचार पालन के लिए आग्रह करती हुई शकुन्तला नैतिक मर्यादा की रक्षा के लिए चिन्तनशील रहती है। तपोवन के वृक्षों एवं लता समूहों के प्रति भी शकुन्तला का स्नेह भाई-बहन का सा है। स्नेह के कारण ही वह जब तक वृक्षों को सिंचने का कार्य सम्पन्न नही कर लेती तब तक स्वयं भी जल नहीं ग्रहण करती थी। अलंकारों की अतिशय प्रिय होने पर भी वृक्षों से पत्ते को नहीं तोड़ती थी और वृक्षों एवं लताओं में पुष्पोद्गम के समय को उत्सव के समान मनाती थी। महर्षि कण्व ने शकुन्तला के पतिगृह गमन के समय उसे वनवासी साथियों से अनुमति लेने के लिए कहते हैं। सामान्य जीवन में भी व्यक्ति दूर गमन करते समय अपने अग्रजों एवं पूजनीय जनों से अनुमति एवं आशीर्वाद प्राप्त करता है। यह नैतिक आदर्श को अभिव्यक्त करता है। इसी प्रकार की अनुमति प्रदान करने की बात

---

9 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3/2

10 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 3/11

11 अभिज्ञानशाकुन्तलम 3/20

महर्षि कण्व के द्वारा साथी वनवासियों से कही गयी है।

पातुं न प्रथमं व्यवस्यति जलं युस्मास्वपीतेषु या
नादत्ते प्रियमण्डनाऽपि भवतां स्नेहेन या पल्लवम्।
आद्ये वः कुसुमप्रसूति समये यस्या भवत्युत्सवः
सेयं याति शकुन्तला पतिगृहं सर्वैरनुज्ञायताम्।।[12]

जिस प्रकार से सामान्य भौतिक जगत में कोई भी मनुष्य अपने सगे-सम्बन्धियों से जब वियुक्त होता है तो वह असहनीय पीड़ा की अनुभूति करता है और उस पीड़ा को वह किसी न किसी रूप में बाहर प्रकट करता है। इसी प्रकार जंगल में पालित-पोषित एवं वनवासी साथियों के मध्य पली-बढ़ी हुई शकुन्तला जब पतिगृह के लिए गमन करती है तो उसके सहचर उसके वियोग में इतने दु:खित हो जाते हैं कि मृगों ने कुशा के ग्रास को भी खाना छोड़ दिया मयूरों ने नाचना छोड़ दिया है, तो वन की लताओं ने भी अपने पीले पत्तों को त्यागकर मानों आंसू बहा रही हो। इस प्रकार महाकवि ने मानव के साथ वन के पशु-पक्षियों एवं वृक्षों के मध्य उच्च नैतिक आदर्श की स्थापना किया है।

उद्गलितदर्भकवला मृग्यः परित्यक्तनर्तना मयूराः।
अपसृतपाण्डुपत्रा मुञ्चन्त्यश्रूणीव लताः।।[13]

इस भौतिक जगत में सभी पितृजनों की यह आन्तरिक अभिलाषा होती है कि जब पुत्री विवाह के योग्य हो जाये तो वह अपने अनुरूप वर को प्राप्त करें जिससे उसका जीवन सुखमय हो। महर्षि कण्व ने भी शकुन्तला को उसके अनुरूप वर को प्रदान करने का संकल्प लिया था जिसे भाग्य ने स्वयं ही संपादित करा दिया। महर्षि कण्व शकुन्तला एवं नवमालिका इन दोनों के प्रति अब निश्चन्ति हो जाते हैं क्योंकि शकुन्तला को दुष्यन्त जैसे पति तो नवमालिका को आम्र जैसे पति मिल गये हैं।

संकल्पितं प्रथममेव मया तवार्थे भर्तारमात्मसदृशं सुकृतैर्गता त्वम्।
चूतेन संश्रितवती नवमालिकेय- मस्यामहं त्वयि च सम्प्रति वीतचिन्तः।।[14]

मनुष्य होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति का यह प्रथम धर्म होता है कि वह किसी भी असहाय प्राणी की रक्षा करे। उसे किसी प्रकार का कष्ट न स्वयं दे और न तो दूसरे प्राणी द्वारा उसे किसी प्रकार का कष्ट देने दे। यहीं मानवता का सर्वोच्च आदर्श होता है जिसे मानव धर्म कहा जाता है। यह धर्म सभी धर्मों से उच्च होता है। अपने इसी मानव धर्म का पालन करते हुए शकुन्तला ने मृग के बच्चे के मुख में कुश के विंध जाने से हुए घाव को भरने में समर्थ इंगुदी का तेल लगाया था।

वहीं मृग का बच्चा पतिगृह गमन के समय उसका मार्ग नहीं छोड़ रहा था। जिसे जंगली साँवा एवं चावल की मुट्ठियों से पाला गया था। कवि ने यहाँ पर पशु का मानव के साथ प्रेम के उच्च आदर्शों की स्थापना की है।

---

12 अभिज्ञानशाकुन्तलम 4/9

13 अभिज्ञानशाकुन्तलम 4/12

14 अभिज्ञानशाकुन्तलम 4/13

यस्य त्वया ब्रणविरोपणमिङ्गुदीनां
तैलं न्यषिच्यत मुखे कुशसूचिविध्ये।
श्यामाकमुष्टिपरिवर्द्धितको जहाति
सोऽयं न पुत्रकृतकः पदवीं मृगस्ते।।[15]

शकुन्तला की विदाई के अवसर पर महर्षि काश्यप ने अपनी पालित पुत्री को जिन नैतिक आदर्शों की शिक्षा प्रदान करते हैं वह समस्त विश्व समुदाय की नव वधुओं के लिए वरदान के समान है। महर्षि द्वारा बताये गये मार्ग का अनुसरण करने वाली स्त्रियाँ कुल को उन्नति के मार्ग पर प्रशस्त कर सकती है और इसके विपरीत आचरण करने वाली स्त्रियाँ कुल के लिए अभिशाप होती हैं।

शुश्रूषस्व गुरून् कुरू प्रियसखीवृत्तिं सपत्नीजने
भर्तुर्विप्रकृताऽपि रोषणतया मा स्म प्रतीपं गमः।
भूयिष्ठं भव दक्षिणा परिजने भाग्येष्वनुत्सेकिनी
यान्त्येवं गृहिणीपदं युवतयो वामाः कुलस्याधयः।।[16]

शकुन्तला अपने पतिगृह गमन के समय पिता कश्यप के वियोग से संतप्त होकर कहती है कि पिताजी अब पुनः मैं कब इस पवित्र आश्रम में आ सकुंगी। इस पर महर्षि कश्यप उसे नैतिक धर्म का उपदेश देते हुए कहते हैं कि चिरकाल तक चारों समुद्रों से व्याप्त पृथ्वी का शासन करने वाले दुष्यन्त की सपत्नी होकर, अपने अद्वितीय महारथी पुत्र दौष्यन्ति को सिंहासन पर बैठाकर और जिसने उसपर परिवार के भार को अर्पित कर दिया हो ऐसे अपने पति के साथ पुनः इस शान्त आश्रम में आकर रह सकोगी।

भूत्वा चिराय चतुरन्तमहीसपत्नी दौष्यन्तिमप्रतिरथं तनयं निवेश्य।
भर्त्रा तदर्पितकुटुम्बभरेण सार्धं शान्ते करिष्यसि पदं पुनराश्रमेऽस्मिन्।।[17]

नैतिकता के आधार पर जब तक पुत्र परिवार के दायित्व का निर्वहन करने योग्य नहीं हो जाता तब तक माता–पिता का यह कर्तव्य बनता है कि परिवार के दायित्व का निर्वहन करें और जब पुत्र परिवार के भार का निर्वहन करने योग्य हो जाये तब माता–पिता अपने पुत्र पर उस दायित्व के भार को अर्पित कर स्वयं उस दायित्व से मुक्त हो जाते हैं। इसी नैतिक तथ्य को महर्षि शकुन्तला से कहते हैं।

हस्तिनापुर के पुरोहित, तपस्वियों को अवगत कराते हैं कि चारों वर्णो– क्षत्रिय, ब्राह्मण, शुद्र और वैश्य तथा चारों आश्रमों ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास के संरक्षक महाराज दुष्यन्त पहले से ही अपना आसन छोड़कर आप तपस्वियों की प्रतीक्षा कर रहे हैं। महाराज के इस प्रकार के शिष्टाचार प्रदर्शन से महर्षि के शिष्य प्रसन्नचित होकर कहते हैं कि वृक्ष फलों से लद जाने पर नम्र हो जाते हैं। बादल नवीन जल से परिपूर्ण हो जाने पर घटायें बहुच नीचे लटक जाती

15 अभिज्ञानशाकुन्तलम 4/14

16 अभिज्ञानशाकुन्तलम 4/18

17 अभिज्ञानशाकुन्तलम 4/20

हैं। सज्जन पुरुष समृद्धि प्राप्त करके और भी सुशील हो जाते हैं। प्राय: परोपकारियों का स्वभाव ही ऐसा होता है।

भवन्ति नम्रास्तरव: फलागमैर्नवाम्बुभिर्दूरविलम्बिनो घना:।

अनुध्दता: सत्पुरूषा: समृद्धिभि: स्वभाव एवैष: परोपकारिणाम्।।[18]

आकाशवाणी द्वारा पुत्री शकुन्तला के परिणीता होने का समाचार प्राप्त होने पर महर्षि कश्यप ने उसे अपने शिष्यों द्वारा संरक्षित कर उसके पति के गृह पर भेजते हुए दुष्यन्त के लिए यह सन्देश भेजवाते हैं कि आपने परस्पर शपथपूर्वक मेरी पुत्री से विवाह किया है अत: आप दोनों के इस कार्य को मैं प्रसन्नता पूर्वक स्वीकृति देता हूँ क्योंकि आप हमारे लिए पूजनीयों में श्रेष्ठ हो और शकुन्तला शरीरधारिणी सत्क्रिया है। ऐसे तुल्य गुणों वाले वर–वधु को मिलाते हुए प्रजापति भी चिरकाल तक प्रशंसा के पात्र हुए हैं। तो अब इस गर्भिणी को अपने साथ धर्माचरण के लिए स्वीकार करें। एक पिता अपनी परिणीता पुत्री को उसके पति के घर पर ही खुश देखना चाहता है। यहीं उस पिता का नैतिक कर्तव्य भी बनता है।

त्वमर्हतां प्राग्रसर: स्मृतोऽसि न: शकुन्तला मूर्तिमती च सत्क्रिया।

समानयंस्तुल्यगुणं बधूवरं चिरस्य वाच्यं न गत: प्रजापति:।।[19]

हस्तिनापुर की राज्यसभा में दुष्यन्त द्वारा शकुन्तला के चरित्र पर आक्षेप करने और उसे पहचानने से इनकार करने पर महर्षि कश्यप के शिष्य शाङ्र्गरव ने क्रोधावेश में कहा कि आप लोग उलटी बात कर रहे हैं क्योंकि जिस व्यक्ति ने जन्म से लेकर आज तक धूर्तता नहीं सीखी उस व्यक्ति की बात को अप्रमाणिक तथा जिसनें दूसरों को धोखा देने को एक विद्या के रूप सीखी है, उसकी बात को प्रमाणिक मान रहे हैं। इस प्रकार तो नैतिकता अपना दम तोड़ते हुए दिखायी दे रही है। जो स्वयं दोषयुक्त होते हुए भी दूसरे व्यक्ति पर दोषारोप लगा रहा है।

आ जन्मन! शाठ्यमाशिक्षितो यस्तस्याप्रमाणं वचनं जनस्य।

परातिसन्धानमधीयतें यैर्विद्येति ते सन्तु किलाप्तवाच:।।[20]

इन्द्र के सारथी मातलि ने जब दुष्यन्त को खिन्न मन वाला देखा तो उसने अदृश्य अवस्था में माधव्य को पकड़कर मेघप्रतिछन्द नामक महल पर लेजाकर उस प्रताड़ित करता हुआ कहता है कि यदि तुझे दुष्यन्त बचा सकता है तो बचा ले।इस प्रकार मातलि के वचनों को सुनकर दु:खितों के दु:ख को दूर करने वाले दुष्यन्त ने धनुष को धारण कर कहता है कि यदि मेरे घर भी भूतों के द्वारा तिरष्कृत होने लगेगें तो फिर प्रजा की रक्षा कौन करेगा? यदि मैं प्रतिदिन अपनी ही प्रमादजन्य त्रुटियों को पूर्णतया नहीं जान पाऊंगा तो फिर प्रजा जनों में कौन किस मार्ग पर जा रहा है इस बात को कैसे जान पाऊंगा। इस नैतिक वचनों के द्वारा दुष्यन्त अपने आप पर खेद, व्यक्त करता है।

अहन्यहन्यात्मन एव तावज्ज्ञातुं प्रमादस्खलितं न शवन्यम्।

प्रजासु क: केन यथा प्रयातित्यशेषतो वेदितुमस्ति शक्ति:।।[21]

---

18 अभिज्ञानशाकुन्तम 5/12

19 अभिज्ञानशाकुन्तलम 5/15

20 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 5/25

मातलि ने राजा दुष्यन्त को उनके नैतिक कर्तव्यों का ज्ञान कराते हुए कहा कि हे राजन्! इन्द्र ने युद्ध में राक्षसों को आपके बाणों का लक्ष्य बनाया है, उन पर ही इस धनुष को चलाइए। सज्जनों की अपने मित्र वर्ग पर प्रेम से मनोहर दृष्टि पड़ती है न कि उनके भयंकर बाण उन पर पड़ते हैं।

कृता: शरव्यं हरिणा तवासुरा: शरासनं तेषु विकृष्यतामिदम्।
प्रसादसौम्यानि सतां सुहृज्जने पतन्ति चक्षुंषि न दारूणा: शरा:।।[22]

दुष्यन्त शकुन्तला के प्रति किये गये अनैतिक व्यवहार पर पश्चाताप करते हुए कहते हैं कि हे सुन्दर मुखों वाली प्रिये भाग्य से पूर्व का वृतान्त स्मरण हो जाने से मेरा अज्ञान रूपी अन्धकार मिट गया है और तुम मेरे सम्मुख उपस्थित हो गयी हो जैसे कि ग्रहण के समाप्त हो जाने पर रोहिणी चन्द्रमा से मिल जाती है।

स्मृतिभिन्नमोहतमसो दिष्ट्या प्रमुखे स्थितासि में सुमुखि।
उपरागन्ते शशिन: समुपगता रोहिणी योगम्।।[23]

निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि प्राचीन भारतीय महापुरूषों ने जिन नैतिक मूल्यो की स्थापना की है वे जीवन के व्यक्तिगत हितों की ओर प्रेरित करते हुए सामाजिक हित को ध्यान में रखकर अन्तिम उद्देश्य मोक्ष को प्राप्त करना ही अनिवार्य बताया है। मनुष्यों के आचारों-व्यहारों का निर्धारण नैतिक मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में समाज के एक बड़े समूह द्वारा अनुमोदित होता है। इसलिए मनुष्यों का आचरण उनकी स्वाभाविक विशिष्टताओं एवं सामाजिक वातावरण का परिणाम होता है। लेकिन जब मानव समाज के एक अंग के रूप में मानव समाज द्वारा निर्धारित मानदण्डों के अनुसार आचरण नहीं करता है तब सामाजिक या वैयक्तिक मूल्यों के प्रति असंवेदनशील हो जाता है जिसके परिणाम स्वरूप नैतिक मूल्यों एवं सामाजिक मूल्यों का महत्व कम हुआ है। अत: व्यक्तियों को सामाजिक मूल्यों मानदण्डों के अनुसार ही आचरण करना चाहिए। सामाजिक मूल्यों या वैयक्तिक मूल्यों के प्रति संवेदनशील रवैया अपनाना चाहिए। जिससे नैतिक व आदर्श युक्त समाज की स्थापना हो सके।

सन्दर्भग्रन्थ सूची

1. अभिज्ञानशाकुन्तलम् – डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, रामनारायण लाल विजय कुमार 2, कटरा रोड इलाहाबाद, सन् 2015

2. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास – आचार्य बलदेव उपाध्याय, उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान, लखनऊ, प्रथम संस्करण, सन् 2000

3. कालिदास और उनका युग – गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, राका प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, सन् 1998

4. मूल्य मीमांक्षा – गोविन्द चन्द्र पाण्डेय, राका प्रकाशन, द्वितीय संस्करण सन् 2005

5. सौन्दर्य-मूल्य और मूल्यांकन – रमेश कुंतलमेघ, प्रतिश्रुति प्रकाशन कोलकाता, प्रथम संस्करण, सन् 2017

---

21 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6/26

22 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 6/29

23 अभिज्ञानशाकुन्तलम् 7/22